IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

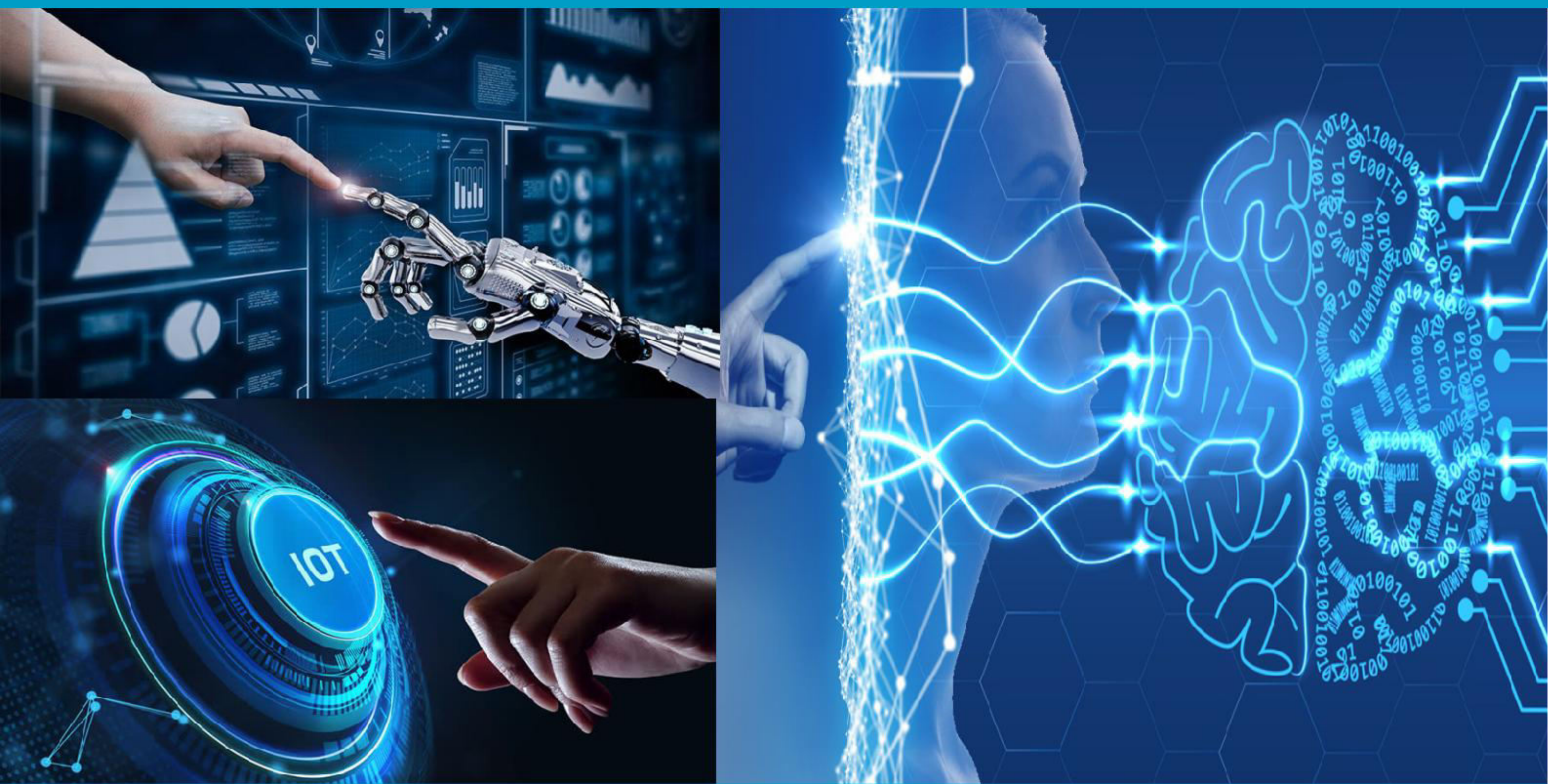

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

वेद: पर्यावरण

Dr. Anchal Meena

Assistant Professor, SBRM Govt. College, Nagaur, Rajasthan, India

सार

पर्यावरण का सीधा-सरल अर्थ है प्रकृति का आवरण। कहा गया है कि ‘परितः आवरणं पर्यावरणम्’ प्राणी जगत को चारों ओर से ढकने वाला प्रकृति तत्व, जिनका हम प्रत्यक्षतः एवं अप्रत्यक्षतः, जाने या अनजाने उपभोग करते हैं तथा जिनसे हमारी भौतिक, आत्मिक एवं मानसिक चेतना प्रवाहित एवं प्रभावित होती है, यह पर्यावरण भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तीन प्रकार का कहा गया है। स्थलीय, जलीय, मृदा, खनिज आदि भौतिक, पौधे, जन्तु, सूक्ष्मजीव एवं मानव आदि जैविक एवं आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सांस्कृतिक तत्वों की परस्पर क्रियाशीलता से समग्र पर्यावरण की रचना और परिवर्तनशीलता निर्धारित होती है। प्रकृति के पंचमहाभूत- क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर-भौतिक एवं जैविक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। वेदों में मूलतः इन पंचमहाभूतों को ही दैवीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव-कृत संस्कृति का निर्माण मानव मन, बुद्धि एवं अहं से होता है। इसीलिए गीता में भगवान कृष्ण ने प्रकृति के पाँच तत्वों के स्थान पर आठ तत्वों का उल्लेख किया है - ‘‘भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धि रेवच। अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।’’ (श्रीमद्भागवद् गीता अ- 7/4)वेदों में पर्यावरण से सम्बन्धित अधिकतम ऋचाएँ यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद में भी पर्यावरण से सम्बन्धित सूक्तों की व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में सभी पंचमहाभूतों की प्राकृतिक विशेषताओं और उनकी क्रियाशीलता का विशद् वर्णन है। आधुनिक विज्ञान भी प्रकृति के उन रहस्यों तक बहुत बाद में पहुँच सका है जिसे वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर लिया था। इतना ही नहीं, वेदों में प्राकृतिक तत्वों से अनावश्यक और अमर्यादित छेड़छाड़ करने के दुष्परिणामों की ओर भी संकेत किया गया है तथा मानव को सीख भी दी गई है कि पर्यावरण सन्तुलन को नष्ट करने के दुष्परिणाम समस्त सृष्टि के लिए हानिकारक होंगे।

यजुर्वेद में पृथ्वी को ऊर्जा (उर्वरता) देने वाली तप्तायनी तथा धन-सम्पदा देने वाली वित्तायनी कहकर प्रार्थना की गई है कि वह हमें साधनहीनता/दीनता की व्यथा और पीड़ा से बचाए ‘तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यनतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्।’ (यजुर्वेद 5/9)। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में क्षिति-पृथ्वी तत्व का मानव जीवन में क्या महत्व है तथा वह किस प्रकार अन्य चार प्रकृति तत्वों के संग, समायोजनपूर्वक क्रियाशील रहकर, उन समस्त जड़-चेतन को जीवनी शक्ति प्रदान करती है, जिनको वह धारण किए हुए है, की विशद व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में पृथ्वी को, अपने में सम्पूर्ण सम्पदा प्रतिष्ठित कर, विश्व के समस्त जीवों का भरण-पोषण करने वाली कहा गया है। [1,2] ‘विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतों निवेशनी’ - (अथर्ववेद 12/16) जब हम पृथ्वी की सम्पदा (अन्न, वनस्पति, औषधि, खनिज आदि) प्राप्त करने हेतु प्रवास करें तो प्रार्थना की गई है कि हमें कई गुना फल प्राप्त हो परन्तु चेतावनी भी दी गई है कि हमारे अनुसंधान और पृथ्वी को क्षत-विक्षत (खोदने) करने के कारण पृथ्वी के मर्मस्थलों को चोट न पहुँचे। अथर्ववेद में पृथ्वी से प्रार्थना की गई है- ‘वतते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदति रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम।।’ - (अथर्ववेद 12/1/35) इसके गम्भीर घातक परिणाम हो सकते हैं। आधुनिक उत्पादन और उपभोग एवं अधिकतम धनार्जन की तकनीक ने पृथ्वी के वनों-पर्वतों को नष्ट कर दिया है। खनिज पदार्थों को प्राप्त करने हेतु अमर्यादित विच्छेदन कर पृथ्वी के मर्मस्थलों पर चोट पहुँचाने के कारण पृथ्वी से जलप्लावन और अग्नि प्रज्वलन, धरती के जगह-जगह फटने और दरारें पड़ने के समाचार हमें प्राप्त होते रहते हैं। खानों में खनन करते समय इसी प्रकार की दुर्घटनाओं ने न जाने कितने लोगों की जानें ही नहीं ली अपितु उन क्षेत्रों के सम्पूर्ण पर्यावरण का विनाश कर उसे बंजर ही बना दिया है। हाल ही में मेघालय की संकरी लगभग 1200 फुट गहरी खदान में अचानक पानी आ जाने की घटना विश्व में घटित इसी प्रकार की तमाम त्रासदियों में से एक है।[3,4]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

परिचय

अथर्ववेद के अनुसार पृथ्वी का हृदय केन्द्र-बिन्दु आकाश में माना गया है जहाँ से उसको शक्ति मिलती है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं। व्योमरूपी आकाश द्यौ (द्युलोक-अतंरिक्ष से परे अपरिमित) को पिता तथा पृथ्वी को माता माना गया है। पृथ्वी को गगन चारों ओर से अपने आलिंगन में आवोष्टित किए हुए है। पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्ध्चक्षुः परि विश्रवं बभूव। (अथर्ववेद 13ध्3ध्44)- इसी कारण से जब हम अन्तरिक्ष में व्याप्त इस आवरण (ओजोन परत) को हानिकारक उत्सर्जित गैसों से छिन्न करते हैं तो पृथ्वी का हृदय उच्छेदित होता है।वेदों में अग्नि (पावक) तत्व को सर्वाधिक शक्तिशाली एवं सर्वव्यापक माना गया है। उसे समस्त जड़-चेतन में ऊर्जा, चेतना तथा गति प्रदान करने वाला एवं नव सृजन का उत्प्रेरक माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषुप य औषधीषु पशुप्वप्स्वन्तः। अग्रे सर्वास्तन्वः संरभस्व ताभिर्न एहिद्रविणोदा अजस्त्र।। (अथर्ववेद 19ध्3ध्2)- हे अग्निदेव आपकी महत्ता जल में (बडवाग्नि रुप में) औषधियों व वनस्पतियों में (फलपाक रूप में), पशु व प्राणियों में (वैश्वानर रूप में) एवं अन्तरिक्षीय मेघों में (विद्युत रूप में) विद्यमान हैं।[5,6] आप सभी रूप में पधारें एवं अक्षय द्रव्य (ऐश्वर्य) प्रदान करने वाले हों। यजुर्वेद के अनुसार यही अग्नि द्युलोक (अन्तरिक्ष में भी ऊपर परम प्रकाश लोक) में आदित्य (सूर्य) रूप में सर्वोच्च भाग पर विद्यमान होकर, जीवन का संचार करके धरती का पालन करते हुए, जल में जीवनी-शक्ति का संचार करती है। -अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपोरतां सि जिन्वति (3ध्12) पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं समस्त ग्रह नक्षत्र मंडल सहित पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के जिस तथ्य को आधुनिक विज्ञान आज केवल लगभग 200 वर्ष पूर्व ही समझ पाया है, उस भौगोलिक और सौर मंडल के रहस्यपूर्ण तथ्य को हमारे वैदिक ऋषि हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर चुके थे। अथर्ववेद में ऋषियों ने कहा है- 'मल्वं विभ्रती गुरुभद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वरोहण पृथिवी संविदाना सूकराय कि जिहीते मृगाय।'। (अथर्ववेद 12ध्1/48)- अर्थात गुरुत्वाकर्षण शक्ति के धारण की क्षमता से युक्त, सभी प्रकार के जड़-चेतन को धारित करने वाली, जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता (अंधकार) का निधन (निवारण) करने वाली पृथ्वी सूर्य के चारो ओर भ्रमण करते हैं। वेदों में सभी ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माड में सूर्य की केन्द्रीय सत्ता को वैज्ञानिकता प्रदान की है[7,8] जिसे आधुनिक विज्ञान अब क्रमशः समझ सकने में सक्षम हो पा रहा है। ऋग्वेद में कहा गया है- 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च द' (ऋग्वेद 1.1 15.1) - अर्थात सूर्य समस्त सृष्टि की आत्मा/जन्मदाता है। सूर्य से पदार्थों को पूर्णता तथा ज्योतिष विज्ञान के अनुसार मानव के जन्म के समय सूर्य तथा उसके आश्रित ग्रह की स्थिति से मानव को समस्त गुण-सूत्र प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में सूर्यदेव को समस्त सृष्टि का प्रादुर्भावकर्ता, अवलंबनकर्ता एवं स्वामी माना गया है।[9,10]

वेदों में सभी ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माड में सूर्य की केन्द्रीय सत्ता को वैज्ञानिकता प्रदान की है जिसे आधुनिक विज्ञान अब क्रमशः समझ सकने में सक्षम हो पा रहा है। ऋग्वेद में कहा गया है- 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च द' (ऋग्वेद 1.1 15.1) - अर्थात सूर्य समस्त सृष्टि की आत्मा/जन्मदाता है। सूरय से पदार्थों को पूर्णता तथा ज्योतिष विज्ञान के अनुसार मानव के जन्म के समय सूर्य तथा उसके आश्रित ग्रह की स्थिति से मानव को समस्त गुण-सूत्र प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में सूर्यदेव को समस्त सृष्टि का प्रादुर्भावकर्ता, अवलंबनकर्ता एवं स्वामी माना गया है। 'सवा अंतरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्ष जायत' (अ.वे.-13/7/13) - अर्थात सूर्य अंतरिक्ष से उत्पन्न हुए एवं अंतरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ है। [11,12]आगे कहा गया है - 'तस्यामू सर्वानक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह' - (अथर्ववेद 13/7/7) - अर्थात चन्द्रमा सहित समस्त दिन, रात्रि, अंतरिक्ष, वायुदेव, द्युलोक, दिशाओं, पृथ्वी, अग्नि, जल, ऋचाओं एवं यज्ञ से प्रकट हुए हैं। उपरोक्त सभी के अंश, गुण व अणु सूर्य में विद्यमान रहे हैं एवं रहेंगे। इसीलिए सूर्य से ये समस्त पदार्थ एवं पंचभूत उत्पन्न हुए हैं। सूर्य ही एक ऐसे देव हैं जिनसे आकाश (नक्षत्रलोक), जल एवं ऊर्जा एवं प्रकाश तथा कीर्ति एवं (यश-अपयश विधि हाथ द्दसूर्य राशि के अधीन) समस्त अन्न एवं उपभोग सामग्री, वनस्पति एवं औषधि इत्यादि सृष्टि को प्राप्त हुआ है। 'कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्न चान्नाद्यं च। य एतं देवमेकवृतं वेद।'' (अथर्ववेद 13/5/1 से 8)निष्कर्ष रूप में, यह सम्पूर्ण पर्यावरण प्रकृति आवरण ही है जो विलक्षण दैवीय शक्तियों से व्याप्त है, जिससे सृष्टि के समस्त जंगम एवं स्थावर, प्राणी व वनस्पति को चेतना, ऊर्जा एवं पुष्टि प्राप्त होती है। ''द्योश्च म इदं पृथिवीं चान्तरिक्षं चमेव्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेघां विश्वेदेवाश्च सं ददुः।'' (अथर्ववेद 12/1/53) - अर्थात द्युलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल एवं विश्व के समस्त देवों (ईश्वरीय प्रकृति शक्तियों) ने सृष्टि को व्याप्त किया है। इसीलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि पृथ्वी इन समस्त शक्तियों को ग्रहण करे एवं इन सभी शक्तियों के लिए भी सदैव कल्याणकारक रहे। पृथ्वी-पृथ्वीवासी-इन दैवीय शक्तियों को प्रदषित न करें।[13,14] ''सन्तेवायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मैदेव वषडस्तु तुभ्यम।।''

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

(यजुर्वेद-11/39) - अर्थात उर्ध्वमुख यज्ञकुण्ड की भाँति पृथ्वी अपने विशाल हृदय को मातृवत प्राणशक्ति संचारक वायु, जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें। वायुदेव दिव्य प्राणऊर्जा से संचारित होते हैं। अतः पृथ्वी (अपने दूषित उच्छवास-कार्बन उत्सर्जन) से उन्हें दूषित न करें। वर्तमान में अन्यथा की स्थिति के कारण ही वायु की प्राण पोषक शक्ति - ऑक्सीजन दूषित होकर सृष्टि के जीवन को दुष्प्रभावित कर रही है।

इस पर्यावरण के जनक इन पंचमहाभूतों से ही प्राणिमात्र की 5 ज्ञानेन्द्रियाँ प्रभावित एवं चेतन होती हैं। इन पंचमहाभूतों के गुण ही हमारी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राण, मन, बुद्धि, कौशल, अहं अर्थात भौतिक, जैविक, आत्मिक एवं संस्कारिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। आकाश का गुण शब्दः वायु का गुण शब्द एवं स्पर्श तेज (पावक-अग्नि) का गुण शब्द, स्पर्श एवं रूप, जल का गुण शब्द, स्पर्श, एवं रस (स्वाद) तथा पृथ्वी समस्त उपरोक्त चारों गुण सहित सुगंध गुण भी अर्थात समस्त गुणों को धारण करती है। इसी कारण पृथ्वी के प्राणी पंचमहाभूतों के 5 गुणों को धारित करते हैं एवं उनसे प्रभावित भी होते हैं। अतः आवश्यक है कि हम पृथ्वीवासी पर्यावरण को दूषित न करें, छिन्न न करें अन्यथा हमें उनसे दूषित अवगुण ही प्राप्त होंगे। यह वैदिक ऋषियों द्वारा प्रस्तुत एक ऐसा सत्य है जिसकी वर्तमान में अवहेलना कर हम पर्यावरण सन्तुलन को समाप्त करते जा रहे हैं।[15,16]

ऋषियों ने न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करने के मानव जीवन एवं सृष्टि पर पड़ने वाले हानिकारक विनाशक परिणामों की ओर संकेत किया, अपितु पर्यावरण की रक्षा एवं हम जो कुछ प्रकृति देवों से प्राप्त कर रहे हैं, उसे उन्हें लौटाकर, पर्यावरण को प्रदूषित करने की अपेक्षा, उसे संरक्षित एवं संवर्धित करने का भी आदेश दिया है। ऋषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को शान्त करने व लोक कल्याणकारी बनाए रखने की प्रार्थना की है। अथर्ववेद में उल्लिखित शान्ति सूक्त का पर्यावरण रक्षण में अपरिमित महत्व है - 'शान्ता द्यौः शान्ता पृथ्वी शान्तमिदमुर्वन्तुन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः।।'' (अथर्ववेद 19/9/1) शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः। शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा।। अर्थात द्युलोक, पृथ्वी, विस्तृत अंतरिक्ष लोक, समुद्र जल, औषधियां ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख शान्तिदायक हों। दिन के अधिष्ठाता देव सूर्य (मित्र) रात्रि के अभिमानी देव वरुण, पालनकर्ता विष्णु, प्रजापालक प्रजापति वैभव के स्वामी इन्द्र, बृहस्पति आदि सभी देव शान्त हों एवं हमें शान्ति प्रदान करने वाले हों।

विचार-विमर्श

वैदिक ऋषि कहते हैं है कि हम पृथ्वी वासी पर्यावरण को दूषित न करें, छिन्न न करें अन्यथा हमें उनसे दूषित अवगुण ही प्राप्त होंगे। यह एक ऐसा सत्य है जिसकी वर्तमान में अवहेलना कर हम पर्यावरण संतुलन को समाप्त करते जा रहे हैं।

पर्यावरण का सीधा- सरल अर्थ है प्रकृति का आवरण। कहा गया है कि 'परितः आवृणोति'। प्राणी जगत को चारों ओर से ढकने वाला प्रकृति तत्व, जिनका हम प्रत्यक्षतः एवं अप्रत्यक्षतः, जाने या अनजाने उपभोग करते हैं तथा जिनसे हमारी भौतिक, आत्मिक एवं मानसिक चेतना प्रवाहित एवं प्रभावित होती है, वही पर्यावरण है। यह पर्यावरण भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तीन प्रकार का कहा गया है। स्थलीय, जलीय, मृदा, खनिज आदि भौतिक; पौधे, जन्तु, सूक्ष्मजीव व मानव आदि जैविक एवं आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सांस्कृतिक तत्वों की परस्पर क्रियाशीलता से समग्र पर्यावरण की रचना व परिवर्तनशीलता निर्धारित होती है। प्रकृति के पंचमहाभूत-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा- भौतिक एवं जैविक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। वेदों में मूलतः इन पंचमहाभूतों को ही दैवीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव कृत संस्कृति का निर्माण मानव मन, बुद्धि एवं अहं से होता है। इसीलिए गीता में भगवान कृष्ण ने प्रकृति के पांच तत्वों के स्थान पर आठ तत्वों का उल्लेख किया है। 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धि रेव च। अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥'' (श्रीमद्भागवद्गीता अ-7/4)वेदों में पर्यावरण से सम्ब्न्धित अधिकतम ऋचाएं यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद में भी पर्यावरण से सम्बंधित सूक्तों की व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में सभी पंचमहाभूतों की प्राकृतिक विशेषताओं व उनकी क्रियाशीलता का विशद्- वर्णन है। आधुनिक विज्ञान भी प्रकृति के उन रहस्यों तक बहुत बाद में पहुंच सका है जिसे वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर लिया था। [17,18] इतना ही नहीं, वेदों में प्रकृति तत्वों से अनावश्यक व अमर्यादित छेड़छाड़ करने के दुष्परिणामों की ओर भी संकेत किया गया है तथा मानव को सीख भी दी गई है कि पर्यावरण संतुलन को नष्ट करने के दुष्परिणाम समस्त सृष्टि के लिए हानिकारक होंगे।यजुर्वेद में पृथ्वी को ऊजार्् (उर्वरकता) देने वाली 'तप्तायनी' तथा धन -सम्पदा देने वाली 'वित्तायनी' कह कर प्रार्थना की गई है कि वह हमें साधनहीनता/दीनता की व्यथा व पीड़ा से बचाए 'तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्।'-(यजुर्वेद 5/9)।अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में 'क्षिति'- पृथ्वी- तत्व का मानव जीवन में क्या महत्व है तथा वह किस प्रकार अन्य चार प्रकृति तत्वों के संग, समायोजन पूर्वक क्रियाशील रह

कर, उन समस्त जड़-चेतन को जीवनी शक्ति प्रदान करती है जिनको वह धारण किए हुए है, की विशद व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में पृथ्वी को, अपने में सम्पूर्ण सम्पदा प्रतिष्ठित कर, विश्व के समस्त जीवों का भरण पोषण करने वाली कहा गया है। 'विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिशठा हिरण्यवक्षा जगतों निवेषनी'- (अथर्ववेद 12/1/6)। जब हम पृथ्वी की सम्पदा (अन्न, वनस्पति, औषधि, खनिज आदि) प्राप्त करने हेतु प्रयास करें तो प्रार्थना कह गई है कि हमें कई गुना फल प्राप्त हो परन्तु चेतावनी भी दी गई है कि हमारे अनुसंधान व पृथ्वी को क्षत विक्षत (खोदने) करने के कारण पृथ्वी के मर्मस्थलों को चोट न पहुंचे। अथर्ववेद में पृथ्वी से प्रार्थना की गई है 'यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥'-(अथर्ववेद 12/1/35)-इसके गम्भीर घातक परिणाम हो सकते हैं। आधुनिक उत्पादन व उपभोग एवं अधिकतम धनार्जन की तकनीक ने पृथ्वी के वनों-पर्वतों को नष्ट कर दिया है। खनिज पदार्थों को प्राप्त करने हेतु अमर्यादित विच्छेदन कर पृथ्वी के मर्मस्थलों पर चोट पहुंचाने के कारण पृथ्वी से जलप्लावन व अग्नि प्रज्वलन, धरती के जगह – जगह फटने व दरारें पड़ने के समाचार हमें प्राप्त होते रहते हैं। खानों में खनन करते समय इसी प्रकार की दुर्घटनाओं ने न जाने कितने लोगों की जानें ही नहीं ली अपितु उन क्षेत्रों के सम्पूर्ण पर्यावरण का विनाश कर उसे बंजर ही बना दिया है।वेदों में अग्नि (पावक) तत्व को सर्वाधिक शक्तिशाली एंव सर्वव्यापक माना गया है। उसे समस्त जड़-चेतन में ऊर्जा, चेतना तथा गति प्रदान करने वाला एवं नव सृजन का उत्प्रेरक माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'यस्ते अप्सु महिमा, यो वनेशु य औशधीशु पषुश्वप्स्वन्त:। अग्ने सर्वास्तन्व: संरभस्व ताभिर्न एहिद्रविणोदा अजस्त्र:॥' (अ. 19/3/2)-हे अग्निदेव आपकी महत्ता जल में (बड़गाग्नि रूप में), औषधियों व वनस्पतियों में (फलपाक रूप में), पशु व प्राणियों में (वैश्वानर रूप में) एवं अंतरीक्षीय मेघों में (विद्युत रूप में) विद्यमान हैं। आप सभी रूप में पधारें एवं अक्षय द्रव्य (ऐश्वर्य) प्रदान करने वाले हों। यजुर्वेद के अनुसार यही अग्नि दयुलोक (अंतरिक्ष से भी ऊपर परम प्रकाश लोक) में आदित्य (सूर्य) रूप में सर्वोच्च भाग पर विद्यमान होकर, जीवन का संचार करके धरती का पालन करते हुए, जल में जीवनी शक्ति का संचार करता है। -'अग्निर्मूर्धा दिव: ककुत्पति: पृथ्व्यि अयम्। अपांरेतां सि जिन्वति।' (3/12)

पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति एवं समस्त गृह नक्षत्र मंडल सहित पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के जिस तथ्य को आधुनिक विज्ञान आज केवल लगभग 200 वर्ष पूर्व ही समझ पाया है, उस भौगोलिक व सौर्य मण्डल के रहस्यपूर्ण तथ्य को हमारे वैदिक ऋषि हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर चुके थे। अथर्ववेद में ऋषियों ने कहा है -'मल्वं विभ्रती गुरूभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षु:। वरोहण पृथिवी संविदाना सूकराय कि जिहीते मृगाय॥'(अ0वे0-12/1/48)- अर्थात गुरूत्वाकर्षण शक्ति के धारण की क्षमता से युक्त, सभी प्रकार के जड़ चेतन को धारित करने वाली, जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता (अंधकार) का निधन (निवारण) करने वाली पृथ्वी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है।वेदों में सभी ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सूर्य की केन्द्रीय सत्ता को वैज्ञानिकता प्रदान की है जिसे कि आधुनिक विज्ञान अब क्रमश: समझ सकने में सक्षम हो पा रहा है। ऋग्वेद में कहा है -'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्च'-(ऋ.वे.-1.115.1)-सूर्य समस्त सृष्टि की आत्मा /जन्मदाता है। सूर्य से पदार्थों को पूर्णता तथा ज्योतिष विज्ञान के अनुसार मानव के जन्म के समय सूर्य तथा उसके आश्रित ग्रहों की स्थिति से मानव को समस्त गुण-सूत्र प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में सूर्यदेव को समस्त सृष्टि का प्रादुर्भावकर्ता, अवलम्बनकर्ता एवं स्वामी माना गया है। 'सवा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्ष जायत'-(अ.वे.-13/7/3)-अर्थात सूर्य अंतरिक्ष से उत्पन्न हुए एवं अंतरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ है। [19,20] आगे कहा गया है -'तस्यामू सर्वानक्षत्रा वषे चन्द्रमसा सह' '-(अ.वे.-13/6/7)-अर्थात चन्द्रमा सहित समस्त नक्षत्र उनके ही वश में हैं। वे सूर्यदेव दिन, रात्रि, अंतरिक्ष, वायुदेव, दयुलोक, दिशाओं, पृथ्वी, अग्नि, जल, ऋचाओं एवं यज्ञ से प्रगट हुए हैं एवं ये सब भी सूर्य से ही प्रगट हुए हैं। उपरोक्त सभी के अंश, गुण व अणु सूर्य में विद्यमान रहे हैं एवं रहेंगे इसीलिए सूर्य से ये समस्त पदार्थ एवं पंचभूत उत्पन्न हुए हैं। सूर्य ही एक ऐसे देव हैं जिनसे आकाश (नक्षत्रलोक), जल एवं ऊर्जा एवं प्रकाश तथा कीर्ति एवं यश ('यश-अपयश विधि हाथ' -सूर्य राशि के अधीन) समस्त अन्न एवं उपभोग सामग्री, वनस्पति एवं औषधि इत्यादि सृष्टि को प्राप्त हुआ है। 'कीर्तिश्च यषश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च। य एतं देवमेकवृतं वेद। (अथर्ववेद 13/5/1 से 8) निष्कर्ष रूप में, यह सम्पूर्ण पर्यावरण, प्रकृति आवरण, ही है जो विलक्षण दैवीय शक्तियों से व्याप्त है जिससे सृष्टि के समस्त जंगम एवं स्थावर, प्राणी व वनस्पति को चेतना, ऊर्जा एवं पुष्टि प्राप्त होती है। -'द्योश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं चमेव्यच:। अग्नि: सूर्य आपो मेधां विश्वेदेवाश्च सं ददु:।' (अथर्ववेद 12/1/53)-अर्थात दयुलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल एवं विश्व के समस्त देवों (ईश्वरीय प्रकृति शक्तियों) ने सृष्टि को व्याप्त किया है॥ इसीलिए यजुर्वेद में कहा गया है कि पृथ्वी इन समस्त शक्तियों को ग्रहण करे एवं इन सभी शक्तियों के लिए भी सदैव कल्याणकारक रहे। पृथिवी-पृथिवीवासी- इन दैवीय शक्तियों को प्रदूषित न करे।'सन्तेवायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मैदेव वशडस्तु तुभ्यम्॥ (यजुर्वेद-11/39)-अर्थात् उर्ध्वमुख यज्ञकुण्ड की भांति पृथ्वी अपने विशाल हृदय को मातृवत प्राणशक्ति संचारक वायु, जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें। वायुदेव दिव्य प्राणऊर्जा से संचारित होते हैं। अत: पृथ्वी (अपने दूषित उच्छवास-कार्बन उत्सर्जन) से उन्हें दूषित न करें। वर्तमान में अन्यथा की स्थिति के कारण ही वायु की प्राण पोषक शक्ति-ऑक्सीजन दूषित होकर सृष्टि के जीवन को दुष्प्रभावित कर रही है।[21]इस पर्यावरण के जनक इन पंचमहाभूतों से ही प्राणिमात्र की 5 ज्ञानेन्द्रियां प्रभावित एवं चेतन होती हैं। इन

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

पंचमहाभूतों के गुण ही हमारी ज्ञानेन्दियों के माध्यम से प्राण, मन, बुद्धि, कौशल, अहं अर्थात् भौतिक, जैविक, आत्मिक एंव संस्कारिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। आकाश का गुण शब्द; वायु का गुण शब्द एव स्पर्श; तेज (पावक-अग्नि) का गुण शब्द, स्पर्श एवं रूप; जल का गुण शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस (स्वाद) तथा पृथ्वी समस्त उपरोक्त चारों गुण सहित सुगंध गुण भी अर्थात समस्त गुणों का धारण करती है। इसी कारण पृथ्वी के प्राणी पंचमहाभूतों के 5 गुणों को धारित करते हैं एवं उनसे प्रभावित भी होते हैं। अत: आवश्यक है कि हम पृथ्वी वासी पर्यावरण को दूषित न करें, छिन्न न करें अन्यथा हमें उनसे दूषित अवगुण ही प्राप्त होंगे। यह वैदिक ऋषियों द्वारा प्रस्तुत एक ऐसा सत्य है जिसकी वर्तमान में अवहेलना कर हम पर्यावरण संतुलन को समाप्त करते जा रहे हैं।ऋषियों ने न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करने के मानव जीवन एवं सृष्टि पर पड़ने वाले हानिकारक विनाशक परिणामों की ओर संकेत किया अपितु पर्यावरण की रक्षा एवं, हम जो कुछ प्रकृति देवों से प्राप्त कर रहे हैं उसे उन्हें लौटा कर, पर्यावरण को प्रदूषित करने की अपेक्षा, उसे संरक्षित एवं सवंर्धित करने का भी आदेश दिया है। ”यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभीरजिष्ठै:। अर्यमा मित्रो वरूण: परिज्मा त्वचं पृन्चन्त्युपरस्य योनौ॥”-ऋग्वेद/1/79/3-(हे अग्निदेव) आप यज्ञ के रसों से चराचर जगत का पोषण करते हैं।[16]

परिणाम

यज्ञ के प्रभाव को सरल मार्गों से अंतरिक्ष में पहुंचाते हैं। तब अर्यमा, मित्र, वरूण एवं मरूद्गण, मेघों के उत्पत्ति स्थल पर इनकी त्वचा में जल को स्थापित करते हैं। प्रकृति चक्र सब जगह व्याप्त है। यह चक्र प्राणियों के लिए अन्नादि पोषक पदार्थों को, उपज रूपी शकट के माध्यम से पहुंचाता है। प्रजाओं (मानवों), को इन्द्रादि देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों (प्रकृति प्रदत्त संसाधनों) को यज्ञों-कर्मों के माध्यम से पुन: सब देवों तक पहुंचा कर सृष्टि चक्र संचालन में देवों का सहयोगी बनना चाहिए।

इसी कारण, ऋषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को शांत करने व लोक कल्याणकारी बनाए रखने की प्रार्थना की है। अथर्ववेद में उल्लेखित शांति सूक्त का पर्यावरण रक्षण में अपरिमित महत्व है-‘षान्ता द्यौ: षान्ता पृथ्वी षान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।षान्ता उदन्वतीराप: षान्ता न: सन्त्वोशधी:॥(अ.वे.-19/9/1) षं नो मित्र: षं वरूण: षं विश्णु: षं प्रजापति:। षं नो इन्द्रो बृहस्पति: षं नो भवत्वर्यमा॥ (अ.वे.-19/9/6) ‘पृथिवी षान्तिरन्तरिक्षं षांतिर्द्यौ: षान्तिराप: षान्तिरोशधय: षांतिर्विनस्पतय: षांतिर्विश्वे मे देवा: षान्ति: सर्वे में देवा: षान्ति: षान्ति: षान्ति: षान्तिभि:। ताभि: षान्तिभि: सर्वषान्तिभि: षमयामोहं यदिह घोरं यदिहक्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव षमस्तु न:॥’- (अ.वे-19/9/14)-अर्थात् घुलोक, पृथ्वी, विस्तृत अंतरिक्ष लोक, समुद्र जल, औषधियां ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख शांति दायक हों। दिन के अधिष्ठाता देव सूर्य (मित्र) रात्रि के अभिमानी देव वरूण, पालनकर्ता विष्णु, प्रजापालक प्रजापति, वैभव के स्वामी इन्द्र, बृहस्पति आदि सभी देव शांत हों एवं हमें शांति प्रदान करने वाले हों। पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्युलोक, जल, औषधियां, वनस्पतियां एवं समस्त देव हमारे लिए शांतिप्रद हों। शांति से भी असीम शांति प्रदान करे। हमारे द्वारा किए गए घोर-अघोर कर्म, क्रूरकर्म, पापकर्म के फलों का शमन कर, शांत होकर हमारे लिए कल्याणकारी एवं मंगलकारी बने।वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर बल दिया गया है। ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण असन्तुलन की समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती। इनमें हुए अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण की समस्याएँ चारों ओर व्याप्त हैं।पर्यावरण-सन्तुलन से तात्पर्य है जीवों के आसपास की समस्त जैविक एवं अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सामंजस्य। इस सामंजस्य का महत्त्व वेदों में विस्तारपूर्वक वर्णित है। वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। इनमें हुए अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल, वायु और भूमि के प्रदूषण की समस्या चारों ओर व्याप्त हैं।[17,18]

जल जीवन का प्रमुख तत्त्व है। इसलिए, वेदों में अनेक स्थानों पर उसके महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद के पहले अध्याय के तेइसवें सूक्त में जल का वैशिष्ट्य बताया गया है। जल में औषधीय गुण विद्यमान रहते हैं। इसीलिए कहा गया कि जल में अमृत है अतः इसकी शुद्धता-स्वच्छता को बनाए रखना चाहिए।

अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में जलतत्त्व पर विचार करते हुए उसकी शुद्धता को स्वस्थ जीवन के लिए नितान्त आवश्यक माना गया है। इसी सूक्त में कहा है कि जल-सन्तुलन से ही भूमि में अपेक्षित सरसता रहती है, पृथ्वी पर हरीतिमा छायी रहती है, वातावरण में स्वाभाविक उत्साह दिखाई पड़ता है एवं समस्त प्राणियों का जीवन सुखमय तथा आनन्दमय बना रहता है। जल के साथ-साथ सभी ऋतुओं को अनुकूल रखने का वर्णन भी वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में स्पष्टतया उल्लिखित है कि वायु में जीवनदायिनी शक्ति है। इसलिए, इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। वेदों में वायु की स्तुति की गई है, जिससे जीवों का निरन्तर सम्यक् विकास होता रहे।

यजुर्वेद के छत्तीसवें अध्याय के अट्ठारहवें मंत्रा में कहा गया है कि प्राणियों के प्रति सहृदयता का परिचय देना ही जीवन का सही

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

लक्षण है। आज जिसे पारिस्थितिकी – तन्त्रा कहते हैं, उसमें भी तो रचना तथा कार्य की दृष्टि से विभिन्न जीवों और वातावरण की मिली-जुली इकाई का ही स्वरूप-विश्लेषण किया जाता है।

लोकोक्ति है कि 'जब तक सांस, तब तक आस' परन्तु जब सांस ही जहरीली हो जाए, तब उससे जीवन की आशा क्या की जा सकती है? वस्तुतः सांस की सार्थकता वातावरण की मुक्तता में निहित है। आज वातावरण मुक्त है कहाँ? मुक्त वातावरण का अर्थ है आवश्यक गैसों की मात्रा में सन्तुलन का बना रहना। चूँकि पादप एवं जन्तु दोनों ही वातावरण-सन्तुलन के प्रमुख घटक हैं, इसलिए दोनों ही का सन्तुलित अनुपात में रहना परमावश्यक है। वेदों में वृक्ष-पूजन का विज्ञान है। इसके विपरीत, आज पेड़-पौधों की निर्ममतापूर्वक कटाई से वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में अतिशय वृद्धि हो रही है। इससे तापमान अनपेक्षित मात्रा में बढ़ता जा रहा है, जो पर्यावरण के लिए संकट का सूचक है।

निस्सन्देह प्रकृति-विज्ञान में असन्तुलन उपस्थित करना विनाश को आमन्त्राण देना होता है। ध्यान रहे कि नदी जब भी बहेगी, सन्तुलन के दो कगारों के बीच से ही बहेगी। उसमें व्यवधान पड़ा नहीं कि वह भंवर बना डालती है, किनारों को झकझोरने लगती है, तटबँध को तोड़ देना चाहती है। फिर तो व्यापक स्तर पर जल-प्लावन शुरू हो जाता है, बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है, जीवन के अस्त-व्यस्त हो जाने का अशोभनीय दृश्य उपस्थित हो जाता है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो समुद्र भी अपनी सीमा छोड़ने लगता है और सम्पूर्ण पृथ्वी पाताल में लय हो जाती है। अतएव, यदि महाविनाश से बचना है, तो प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ने की चेष्ट कभी नहीं की जानी चाहिए। जल की तरह ही हवा में अवरोध उत्पन्न होने से बवण्डर खड़ा हो जाता है, तूफान आ जाता है, उसके प्रचण्ड आघात से घर-मकान, वन, उपवन, ग्राम-नगर सब-के-सब धराशायी हो जाते हैं। धरती की शोभा नष्ट हो जाती है। वस्तुतः पर्यावरण-सन्तुलन के महत्त्व-प्रतिपादन के लिए ही वेदों में अनेक स्थलों पर जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि आदि का स्तवन किया गया है।

ऋग्वेद में अग्नि को पिता के समान कल्याण करनेवाला कहा गया है। वेद का शुभारम्भ ही 'अग्नितत्त्व' के स्तवन से होता है, जो सफल जीवन का निर्माता है। अग्नि को स्वयं आगे आकर समस्त परिवेश का हित करने वाला, सामाजिक संगठन का सच्चा संचालक तथा शुभदायक माना गया है। ऋग्वेद के पहले ही मंत्रा में अग्नि का यह स्तवन समाज में सन्तुलन और त्याग का महत्त्व प्रतिपादित करता है। त्याग से ही समाज में सन्तुलन बना रहता है। त्याग की भावना भी स्वयं प्रेरित होनी चाहिए ऐसा न होने पर स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती है और कटुता उत्पन्न हो जाती है, जो असन्तुलन का मूल कारण होती है।

वेदों में पर्यावरण-सन्तुलन का महत्त्व अनेक प्रसंगों में वर्णित है। महान वेदज्ञ महर्षि यास्क ने अग्नि को पृथ्वी-स्थानीय, वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय एवं सूर्य को द्युस्थानीय देवता के रूप में महत्त्वपूर्ण मानकर सम्पूर्ण पर्यावरण को स्वच्छ, विस्तृत तथा सन्तुलित रखने का भाव व्यक्त किया है।

इन्द्र भी वायु का ही एक रूप है। इन दोनों का स्थान अन्तरिक्ष में अर्थात् पृथ्वी तथा अकाश के बीच है। द्युलोक से अभिप्राय आकाश से ही है। अन्तरिक्ष से ही वर्षा होती है और आँधी-तूफान भी वहीं से आते हैं। सूर्य आकाश से प्रकाश देता है पृथ्वी और औषधियों के जल को वाष्प बनाता है, मेघ का निर्माण करता है। उद्देश्य होता है पृथ्वी को जीवों के अनुकूल बनाकर रखना। परन्तु, अग्नि केवल पृथ्वी पर नहीं है, वह अन्तरिक्ष और आकाश में भी है।[19,20]

अन्तरिक्ष में विद्युत के रूप में और द्युलोक-आकाश से सूर्य-रूप में भी अग्नि ही है। पृथ्वी पर तो वह है ही। अभिप्राय यह कि ये सब एकसूत्रा में सम्बद्ध हैं। यही प्राकृतिक अनुकूलता है। पर्यावरण-सन्तुलन का अन्यतम निदर्शन है। आज हिंसा से विश्वपर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उससे कर्म में असन्तुलन उपस्थित हो गया है। इससे बचने के लिए वेद-प्रतिपादित सात्त्विक भाव अपनाना पड़ेगा। ऋग्वेद के दूसरे अध्याय के ग्यारहवें सूक्त के चौथे मंत्रा में कहा गया है कि सम्पूर्ण पृथ्वी, सम्पूर्ण परिवेश शुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हो, तभी जीवन का सम्यक् विकास हो सकेगा।

पर्यावरण को स्वच्छ व सुन्दर रखने का आग्रह सिर्फ भावनात्मक स्तर पर किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में भी सात्विकता की भावना से अनुप्राणित होकर गहरे मानवीय सम्बन्ध की स्थापना पर पर्याप्त बल दिया गया है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद के पहले मंडल के 164वें सूक्त में वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में भी सूर्य को पिता, पृथ्वी को माता और किरण-समूह को बन्धु के समान आदर देने का स्पष्ट निर्देश है। आज तो गलत प्रतिस्पर्धा के कारण विश्व का पर्यावरण विषाक्त बनता जा रहा है। कोल्ड स्टोरेज एवं वातानुकूलन के प्रयास पारिस्थितिकी के लिए अभूतपूर्व संकट उत्पन्न कर रहे हैं। वेद का स्पष्ट निर्देश है कि लोग प्रकृति के प्रति सदा पूर्ण श्रद्धा रखें और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के निमित्त उससे पर्यावरण की अनुकूलता प्राप्त करते रहें। शुक्ल यजुर्वेद का शाश्वत सन्देश है – पवन मधुर, सरस व शुद्ध तथा गतिशील रहे, सागर मधुर वर्षण करे। ओज प्रदान करने वाली अन्नादि वस्तुएँ भोजन के बाद मधु के समान सुकोमल बन जाएँ। रात के साथ-

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

साथ दिन भी मधुर रहे। पृथ्वी की धूल से लेकर अन्तरिक्ष तक मधुर हों। न केवल जीवित मनुष्यों का, अपितु पितरों का जीवन भी मधुमय रहे। सूर्य मधुमय रहें, गायें मधुर दूध देने वाली हों। निखिल ब्रह्माण्ड मधुमय रहे।

निष्कर्ष

वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण-असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। पर्यावरण-सन्तुलन से तात्पर्य है जीवों के आसपास की समस्त जैविक एवं अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सामंजस्य। इस सामंजस्य का महत्त्व वेदों में विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्याणकारी संकल्पना, शुद्ध आचरण, निर्मल वाणी एवं सुनिश्चित गति क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की मूल विशेषताएँ मानी जाती हैं और पर्यावरण-सन्तुलन भी मुख्यतः इन्हीं गुणों पर समाश्रित है।वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण-असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। इनमें हुए अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण की समस्याएँ चारों ओर व्याप्त हैं।जल जीवन का प्रमुख तत्त्व है। इसलिए, वेदों में अनेक सन्दर्भों में उसके महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद (1.23.248) में श्अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजंश् के रूप में जल का वैशिष्ट्य बताया गया है। अर्थात्, जल में अमृत है, जल में औषधि-गुण विद्यमान रहते हैं। अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता-स्वच्छता को बनाए रखने की।अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त में जलतत्त्व पर विचार करते हुए उसकी शुद्धता को स्वस्थ जीवन के लिए नितान्त आवश्यक माना गया है।

‘शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु’।

-(अथर्ववेद, 12.1.30)

निस्सन्देह, जल-सन्तुलन से ही भूमि में अपेक्षित सरसता रहती है, पृथ्वी पर हरीतिमा छायी रहती है, वातावरण में स्वाभाविक उत्साह दिखाई पड़ता है एवं समस्त प्राणियों का जीवन सुखमय तथा आनन्दमय बना रहता हैः

‘वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सानो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि’

-(अथर्ववेद, 12.1.52)

जल के साथ-साथ सभी ऋतुओं को अनुकूल रखने का वर्णन भी वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में स्पष्टतया व्यंजित हैः

‘उतो स मह्यं इदुंभिः युक्तान् षट् सेषिधत्।’

वायु में जीवनदायिनी शक्ति है। इसलिए, इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। वेदों में वायु की स्तुति की गई है, जिससे जीवों का निरन्तर सम्यक् विकास होता रहेः

यजुर्वेद (36.18) में श्मित्रस्याहं भक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षे’ का संकल्प व्यक्त है। अर्थात्, सभी प्राणियों के प्रति सहृदयता का परिचय देना ही जीवन का सही लक्षण है। आज जिसे पारिस्थितिकी-तन्त्र कहते हैं, उसमें भी तो रचना तथा कार्य की दृष्टि से विभिन्न जीवों और वातावरण की मिली-जुली इकाई का ही स्वरूप-विश्लेषण किया जाता है।लोकोक्ति है कि ‘जब तक सांस, तब तक आस।’ परन्तु जब सांस ही जहरीली हो जाए, तब उससे जीवन की आशा क्या की जा सकती है? वस्तुतः सांस की सार्थकता वातावरण की मुक्तता में निहित है। आज वातावरण मुक्त है कहाँ? मुक्त वातावरण का अर्थ है आवश्यक गैसों की मात्रा में सन्तुलन का बना रहना। चूँकि पादप एवं जन्तु दोनों ही वातावरण-सन्तुलन के प्रमुख घटक हैं, इसलिए दोनों ही का सन्तुलित अनुपात में रहना परमावश्यक है। वेदों में वृक्ष-पूजन का विज्ञान है। इसके विपरीत, आज पेड़-पौधों की निर्ममता-पूर्वक कटाई से वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा में अतिशय वृद्धि हो रही है। इससे तापमान अनपेक्षित मात्रा में बढ़ता जा रहा है, जो पर्यावरण के लिए संकट का सूचक है।निस्सन्देह प्रकृति-विज्ञान में असन्तुलन उपस्थित करना विनाश को आमन्त्रण देना होता है। ध्यान रहे कि नदी जब भी बहेगी, सन्तुलन के दो कगारों के बीच से ही बहेगी। उसमें व्यवधान पड़ा नहीं कि वह आवर्त बना डालती है, किनारों को झकझोरने लगती है, तटबँध को तोड़ देना चाहती है। निस्सन्देह प्रकृति-विज्ञान में असन्तुलन उपस्थित करना विनाश को आमन्त्रण देना होता है। ध्यान रहे कि नदी जब भी बहेगी, सन्तुलन के दो कगारों के बीच से ही बहेगी। उसमें व्यवधान पड़ा नहीं कि वह आवर्त बना डालती है, किनारों को झकझोरने लगती है, तटबँध को तोड़ देना चाहती है। फिर तो व्यापक स्तर पर जल-प्लावन शुरू हो जाता है, बाढ़ का प्रकोप बढ़

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

जाता है, जीवन के अस्त-व्यत हो जाने का अशोभन दृश्य उपस्थित हो जाता है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो समुद्र भी अपनी सीमा छोड़ने लगता है और सम्पूर्ण पृथ्वी पाताल में लय हो जाती है। अतएव, यदि महाविनाश से बचना है, तो प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ने की चेष्ट कभी नहीं की जानी चाहिए।

जल की तरह हवा में अवरोध उत्पन्न होने से बवण्डर खड़ा हो जाता है, तूफान आ जाता है, उसके प्रचण्ड आघात से घर-मकान, वन, उपवन, ग्राम-नगर सब-के-सब धराशायी हो जाते हैं। धरती की शोभा नष्ट हो जाती है।वस्तुतः पर्यावरण-सन्तुलन के महत्त्व-प्रतिपादन के लिए ही वेदों में अनेक स्थलों पर जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि आदि का स्तवन किया गया है।ऋग्वेद में अग्नि को पिता के समान कल्याण करनेवाला कहा गया है।[18,19]

'अग्ने। सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व।'

वेद का शुभारम्भ ही 'अग्नितथव' के स्तवन से होता है, जो सफल जीवन का निर्माता-अग्रणी नेता है। उसे स्वयं आगे आकर समस्त परिवेश का हित करनेवाला, सामाजिक संगठन का सच्चा संचालक तथा शुभदायक माना गया हैः

'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव ऋत्विजम्।

होतारं रत्नघातमम्।।' (ऋग्वेद, 1.1.1.)

-अग्नि का यह स्तवन समाज-सन्तुलन का संकेत करता है, त्याग का महत्त्व-प्रतिपादन करता है। त्याग से ही समाज में सन्तुलन बना रहता है। यहाँ 'देव ऋत्विजम्' से अभिप्राय है स्वयं उत्सुक होकर हित करना। कारण यह है कि त्याग की भावना से प्रेरित नहीं रहने पर स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती है और उससे कटुता उत्पन्न हो जाती है, जो असन्तुलन का मूल कारण सिद्ध होता है।वेदों में पर्यावरण-सन्तुलन का महत्त्व अनेक प्रसंगों में व्यंजित है। महावेदश महर्षि यास्क ने अग्नि को पृथ्वी-स्थानीय, वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय एवं सूर्य को द्युस्थानीय देवता के रूप में महत्त्वपूर्ण मानकर सम्पूर्ण पर्यावरण को स्वच्छ, विस्तृत तथा सन्तुलित रखने का भाव व्यक्त किया है।इन्द्र भी वायु का ही एक रूप है। इन दोनों का स्थान अन्तरिक्ष में अर्थात् पृथ्वी तथा अकाश के बीच है। द्युलोक से अभिप्राय आकाश से ही है। अन्तरिक्ष से ही वर्षा होती है और आँधी-तूफान भी वहीं से आते हैं। सूर्य आकाश से प्रकाश देता है पृथ्वी और औषधियों के जल को वाष्प बनाता है, मेघ का निर्माण करता है। उद्देश्य होता है पृथ्वी को जीवों के अनुकूल बनाकर रखना। परन्तु, अग्नि केवल पृथ्वी पर नहीं है, वह अन्तरिक्ष और आकाश में भी है। अन्तरिक्ष में विद्युत के रूप में और द्युलोक-आकाश से सूर्य-रूप में भी अग्नि ही है। पृथ्वी पर तो वह है ही। अभिप्राय यह कि ये सब एकसूत्र में सम्बद्ध हैं- यही प्राकृतिक अनुकूलता है- पर्यावरण-सन्तुलन का अन्यतम निदर्शन है।यह आज हिंसा से विश्वपर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उससे कर्म में असन्तुलन उपस्थित हो गया है। इससे बचने के लिए वेद-प्रतिपादित सात्त्विक भाव अपनाना पड़ेगा।'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्र मसाविव। पुनर्ददतोध्नता जानता संगमेमदि।।'(ऋग्वेद 2.11.4)इसी से ऋग्वेद (1.555.1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार हैः श्पृथ्वीः पूः च उर्वी भव।श् अर्थात्, समग्र पृथ्वी, सम्पूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हो, तभी जीवन का सम्यक् विकास हो सकेगा।

पर्यावरण को स्वच्छ-सुन्दर रखने का आग्रह सिर्फ भावनात्मक स्तर पर किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में भी सात्विकता की भावना से अनुप्राणित होकर गहरे मानवीय सम्बन्ध की स्थापना पर पर्याप्त बल दिया गया है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद (1.164.33) में वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में भी सूर्य को पिता, पृथ्वी को माता और किरण-समूह को बन्धु के समान आदर देने का स्पष्ट निर्देश है। आज तो गलत प्रतिस्पर्धा के कारण विश्वपर्यावरण विषाक्त बनता जा रहा है। प्रशीतन एवं वातानुकूलन के कृत्रिम प्रयास पारिस्थिति के लिए अभूतपूर्व संकट उत्पन्न कर रहे हैं।वेद का स्पष्ट निर्देश है कि लोग प्रकृति के प्रति सदा पूर्ण श्रद्धा रखें और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के निमित्त उससे पर्यावरण की अनुकूलता प्राप्त करते रहें। शुक्ल-यजुर्वेद का शाश्वत सन्देश हैय मधुयुक्त सरस-शुद्ध पवन गतिशील रहे, सागर मधुपूर्ण वर्षण करे। ओज प्रदान करने वाली अन्नादि वस्तुएँ भोजन के बाद मधुसदृश सुकोमल बन जाएँ। रात के साथ-साथ दिन भी मधुर रहे। पृथ्वी की धूल से लेकर अन्तरिक्ष तक मधुसंयुक्त हो। न केवल जीवित मनुष्यों का, अपितु पितरों का जीवन भी मधुमय रहे। सूर्य मधुमय रहें, गायें मधुर दूध देने वाली हों। निखिल ब्रह्माण्ड मधुमय रहे।-(शुक्ल यजुर्वेद, 13.2729)निष्कर्षतः वेद-निरूपित पर्यावरण-संरक्षण स्वस्थ एवं विकसित जीवन का अन्यतम निदर्शन है।डा. सीमाराम झा 'श्याम'(लेखक अवकाशप्राप्त प्रोफेसर एवं भारतविद्या के विख्यात लेखक हैं)वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण-असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। पर्यावरण-सन्तुलन से तात्पर्य है जीवों के आसपास की समस्त जैविक एवं अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सामंजस्य। इस सामंजस्य का महत्त्व वेदों में

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

विस्तारपूर्वक वर्णित है।कल्याणकारी संकल्पना, शुद्ध आचरण, निर्मल वाणी एवं सुनिश्चित गति क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की मूल विशेषताएँ मानी जाती हैं और पर्यावरण-सन्तुलन भी मुख्यतः इन्हीं गुणों पर समाश्रित है।वेदों में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अन्तरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के निर्देशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण-असन्तुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती। इनमें हुए अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण की समस्याएँ चारों ओर व्याप्त हैं।[20,21]

जल जीवन का प्रमुख तत्त्व है। इसलिए, वेदों में अनेक सन्दर्भों में उसके महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद (1.23.248) में श्अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजंश् के रूप में जल का वैशिष्ट्य बताया गया है। अर्थात्, जल में अमृत है, जल में औषधि-गुण विद्यमान रहते हैं। अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता-स्वच्छता को बनाए रखने की।अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त में जलतत्त्व पर विचार करते हुए उसकी शुद्धता को स्वस्थ जीवन के लिए नितान्त आवश्यक माना गया है।'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु'।-(अथर्ववेद, 12.1.30)

निस्सन्देह, जल-सन्तुलन से ही भूमि में अपेक्षित सरसता रहती है, पृथ्वी पर हरीतिमा छायी रहती है, वातावरण में स्वाभाविक उत्साह दिखाई पड़ता है एवं समस्त प्राणियों का जीवन सुखमय तथा आनन्दमय बना रहता हैः'वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सानो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि'-(अथर्ववेद, 12.1.52)जल के साथ-साथ सभी ऋतुओं को अनुकूल रखने का वर्णन भी वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में स्पष्टतया व्यंजित हैः'उतो स मह्यं इदुंभिः युक्तान् षट् सेषिधत्।'वायु में जीवनदायिनी शक्ति है। इसलिए, इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। वेदों में वायु की स्तुति की गई है, जिससे जीवों का निरन्तर सम्यक् विकास होता रहेःयजुर्वेद (36.18) में श्मित्रस्याहं भक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' का संकल्प व्यक्त है। अर्थात्, सभी प्राणियों के प्रति सहृदयता का परिचय देना ही जीवन का सही लक्षण है। आज जिसे पारिस्थितिकी-तन्त्र कहते हैं, उसमें भी तो रचना तथा कार्य की दृष्टि से विभिन्न जीवों और वातावरण की मिली-जुली इकाई का ही स्वरूप-विश्लेषण किया जाता है।लोकोक्ति है कि 'जब तक सांस, तब तक आस।' परन्तु जब सांस ही जहरीली हो जाए, तब उससे जीवन की आशा क्या की जा सकती है? वस्तुतः सांस की सार्थकता वातावरण की मुक्तता में निहित है। आज वातावरण मुक्त है कहाँ? मुक्त वातावरण का अर्थ है आवश्यक गैसों की मात्रा में सन्तुलन का बना रहना। चूँकि पादप एवं जन्तु दोनों ही वातावरण-सन्तुलन के प्रमुख घटक हैं, इसलिए दोनों ही का सन्तुलित अनुपात में रहना परमावश्यक है। वेदों में वृक्ष-पूजन का विज्ञान है। इसके विपरीत, आज पेड़-पौधों की निर्ममता-पूर्वक कटाई से वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा में अतिशय वृद्धि हो रही है। इससे तापमान अनपेक्षित मात्रा में बढ़ता जा रहा है, जो पर्यावरण के लिए संकट का सूचक है।निस्सन्देह प्रकृति-विज्ञान में असन्तुलन उपस्थित करना विनाश को आमन्त्रण देना होता है। ध्यान रहे कि नदी जब भी बहेगी, सन्तुलन के दो कगारों के बीच से ही बहेगी। उसमें व्यवधान पड़ा नहीं कि वह आवर्त बना डालती है, किनारों को झकझोरने लगती है, तटबँध को तोड़ देना चाहती है। निस्सन्देह प्रकृति-विज्ञान में असन्तुलन उपस्थित करना विनाश को आमन्त्रण देना होता है। ध्यान रहे कि नदी जब भी बहेगी, सन्तुलन के दो कगारों के बीच से ही बहेगी। उसमें व्यवधान पड़ा नहीं कि वह आवर्त बना डालती है, किनारों को झकझोरने लगती है, तटबँध को तोड़ देना चाहती है। फिर तो व्यापक स्तर पर जल-प्लावन शुरू हो जाता है, बाढ़ का प्रकोप बढ़ जाता है, जीवन के अस्त-व्यत हो जाने का अशोभन दृश्य उपस्थित हो जाता है। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो समुद्र भी अपनी सीमा छोड़ने लगता है और सम्पूर्ण पृथ्वी पाताल में लय हो जाती है। अतएव, यदि महाविनाश से बचना है, तो प्राकृतिक सन्तुलन को बिगाड़ने की चेष्ट कभी नहीं की जानी चाहिए।

जल की तरह हवा में अवरोध उत्पन्न होने से बवण्डर खड़ा हो जाता है, तूफान आ जाता है, उसके प्रचण्ड आघात से घर-मकान, वन, उपवन, ग्राम-नगर सब-के-सब धराशायी हो जाते हैं। धरती की शोभा नष्ट हो जाती है।वस्तुतः पर्यावरण-सन्तुलन के महत्त्व-प्रतिपादन के लिए ही वेदों में अनेक स्थलों पर जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि आदि का स्तवन किया गया है।ऋग्वेद में अग्नि को पिता के समान कल्याण करनेवाला कहा गया है।'अग्ने। सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व।'वेद का शुभारम्भ ही 'अग्नितथव' के स्तवन से होता है, जो सफल जीवन का निर्माता-अग्रणी नेता है। उसे स्वयं आगे आकर समस्त परिवेश का हित करनेवाला, सामाजिक संगठन का सच्चा संचालक तथा शुभदायक माना गया हैः'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव ऋत्विजम्।होतारं रत्नघातमम्।।' (ऋग्वेद, 1.1.1.)-अग्नि का यह स्तवन समाज-सन्तुलन का संकेत करता है, त्याग का महत्त्व-प्रतिपादन करता है। त्याग से ही समाज में सन्तुलन बना रहता है। यहाँ 'देव ऋत्विजम्' से अभिप्राय है स्वयं उत्सुक होकर हित करना। कारण यह है कि त्याग की भावना से प्रेरित नहीं रहने पर स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती है और उससे कटुता उत्पन्न हो जाती है, जो असन्तुलन का मूल कारण सिद्ध होता है।वेदों में पर्यावरण-सन्तुलन का महत्त्व अनेक प्रसंगों में व्यंजित है। महावेदश महर्षि यास्क ने अग्नि को पृथ्वी-स्थानीय, वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय एवं सूर्य को दयुस्थानीय देवता के रूप में महत्त्वपूर्ण मानकर सम्पूर्ण पर्यावरण को स्वच्छ, विस्तृत तथा सन्तुलित रखने का भाव व्यक्त किया है।इन्द्र भी वायु का ही एक रूप है। इन दोनों का स्थान अन्तरिक्ष में अर्थात् पृथ्वी तथा अकाश के बीच है। दयुलोक से अभिप्राय आकाश से ही है। अन्तरिक्ष से ही वर्षा होती है और आँधी-तूफान भी वहीं से आते हैं। सूर्य आकाश से प्रकाश देता है पृथ्वी और

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

औषधियों के जल को वाष्प बनाता है, मेघ का निर्माण करता है। उद्देश्य होता है पृथ्वी को जीवों के अनुकूल बनाकर रखना। परन्तु, अग्नि केवल पृथ्वी पर नहीं है, वह अन्तरिक्ष और आकाश में भी है। अन्तरिक्ष में विद्‌युत के रूप में और द्‌युलोक-आकाश से सूर्य-रूप में भी अग्नि ही है। पृथ्वी पर तो वह है ही। अभिप्राय यह कि ये सब एकसूत्र में सम्बद्ध हैं- यही प्राकृतिक अनुकूलता है- पर्यावरण-सन्तुलन का अन्यतम निदर्शन है।यह आज हिंसा से विश्वपर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उससे कर्म में असन्तुलन उपस्थित हो गया है। इससे बचने के लिए वेद-प्रतिपादित सात्त्विक भाव अपनाना पड़ेगा।'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्र मसाविव। पुनर्ददतोध्नता जानता संगमेमदि।।'(ऋग्वेद 2.11.4)इसी से ऋग्वेद (1.555.1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार हैः श्पृथ्वीः पूः च उर्वी भव।श् अर्थात्, समग्र पृथ्वी, सम्पूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हो, तभी जीवन का सम्यक्‌ विकास हो सकेगा।पर्यावरण को स्वच्छ-सुन्दर रखने का आग्रह सिर्फ भावनात्मक स्तर पर किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। वैज्ञानिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में भी सात्विकता की भावना से अनुप्राणित होकर गहरे मानवीय सम्बन्ध की स्थापना पर पर्याप्त बल दिया गया है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद (1.164.33) में वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में भी सूर्य को पिता, पृथ्वी को माता और किरण-समूह को बन्धु के समान आदर देने का स्पष्ट निर्देश है। आज तो गलत प्रतिस्पर्धा के कारण विश्वपर्यावरण विषाक्त बनता जा रहा है। प्रशीतन एवं वातानुकूलन के कृत्रिम प्रयास पारिस्थिति के लिए अभूतपूर्व संकट उत्पन्न कर रहे हैं।[16,17]

वेद का स्पष्ट निर्देश है कि लोग प्रकृति के प्रति सदा पूर्ण श्रद्धा रखें और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के निमित्त उससे पर्यावरण की अनुकूलता प्राप्त करते रहें। शुक्ल-यजुर्वेद का शाश्वत सन्देश हैय मधुयुक्त सरस-शुद्ध पवन गतिशील रहे, सागर मधुपूर्ण वर्षण करे। ओज प्रदान करने वाली अन्नादि वस्तुएँ भोजन के बाद मधुसदृश सुकोमल बन जाएँ। रात के साथ-साथ दिन भी मधुर रहे। पृथ्वी की धूल से लेकर अन्तरिक्ष तक मधुसंयुक्त हो। न केवल जीवित मनुष्यों का, अपितु पितरों का जीवन भी मधुमय रहे। सूर्य मधुमय रहें, गायें मधुर दूध देने वाली हों। निखिल ब्रह्ममाण्ड मधुमय रहे।[21]

संदर्भ

1. Jamieson, Dale. (2007). The Heart of Environmentalism. In R. Sandler & P. C. Pezzullo. Environmental Justice and Environmentalism. (pp. 85-101). Massachusetts Institute of Technology Press.
2. ↑ बासक, अनिंदिता - पर्यावरणीय अध्ययन Archived 2014-08-08 at the Wayback Machine, गूगल पुस्तक, (अभिगमन तिथि 04-08-2014
3. ↑ सुरेश लाल श्रीवास्तव प्रतियोगिता दर्पण, मार्च, २००९ Archived 2014-12-14 at the Wayback Machine
4. ↑ सुरेश लाल श्रीवास्तव प्रतियोगिता दर्पण, मार्च, २००९ Archived 2014-12-14 at the Wayback Machine
5. ↑ मधु अस्थानापर्यावरण एक संक्षिप्त अध्ययन Archived 2014-05-31 at the Wayback Machine
6. ↑ "अंग्रेजी विक्षनरी". मूल से 8 अगस्त 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 4 अगस्त 2014.
7. ↑ "Online etymology dictionary". मूल से 11 अगस्त 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 4 अगस्त 2014.
8. ↑ सविन्द्र सिंह, जैव भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन
9. ↑ गाया परिकल्पना Archived 2014-08-11 at the Wayback Machine, ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी पर (अभिगमन तिथि 05-08-2014)
10. ↑ Lovelock, J.E. (1 अगस्त 1972). "Gaia as seen through the atmosphere". Atmospheric Environment (1967) (Elsevier) 6 (8): 579–580.
11. ↑ Richards, Ellen H. (1907 (2012 reprint))Sanitation in Daily Life Archived 2014-04-27 at the Wayback Machine, Forgotten Books. pp. v.
12. ↑ आर° डी° दीक्षित, भौगोलिक चिंतन का विकास Archived 2014-07-29 at the Wayback Machine पृष्ठ सं° 253, गूगल पुस्तक (अभिगमन तिथि 25-07-2014)
13. ↑ हार्लेन एच° बैरोज, (1923), Geography as Human Ecology, Annals of the Association of American Geographers, 13(1):1-14
14. ↑ Johnson, D.L., S.H. Ambrose, T.J. Bassett, M.L. Bowen, D.E. Crummey, J.S. Isaacson, D.N. Johnson, P. Lamb, M. Saul, and A.E. Winter-Nelson. 1997. Meanings of environmental terms. Journal of Environmental Quality 26: 581–589.

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 2, February 2020

15. ↑ Richard Anderson, Resource depletion: Opportunity or looming catastrophe? Archived 2014-08-08 at the Wayback Machine, BBC News पर, (अभिगमन तिथि 05-08-2014)
16. ↑ Fred Magdoff, Global Resource Depletion: Is Population the Problem? Archived 2014-09-16 at the Wayback Machine, Monthly Review, 2013, Volume 64, Issue 08 (January), (अभिगमन तिथि 05-08-2014)
17. ↑ pollution (environment) Archived 2015-02-17 at the Wayback Machine, Encyclopedia Brittanica; "pollution, also called environmental pollution, the addition of any substance (solid, liquid, or gas) or any form of energy (such as heat, sound, or radioactivity) to the environment at a rate faster than it can be dispersed, diluted, decomposed, recycled, or stored in some harmless form."
18. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 29 दिसंबर 2015 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 22 अक्तूबर 2015.
19. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 12 अगस्त 2015 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 22 अक्तूबर 2015.
20. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 12 जून 2018 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 22 अक्तूबर 2015.
21. ↑ "राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण". मूल से 20 अगस्त 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 22 अगस्त 2014.

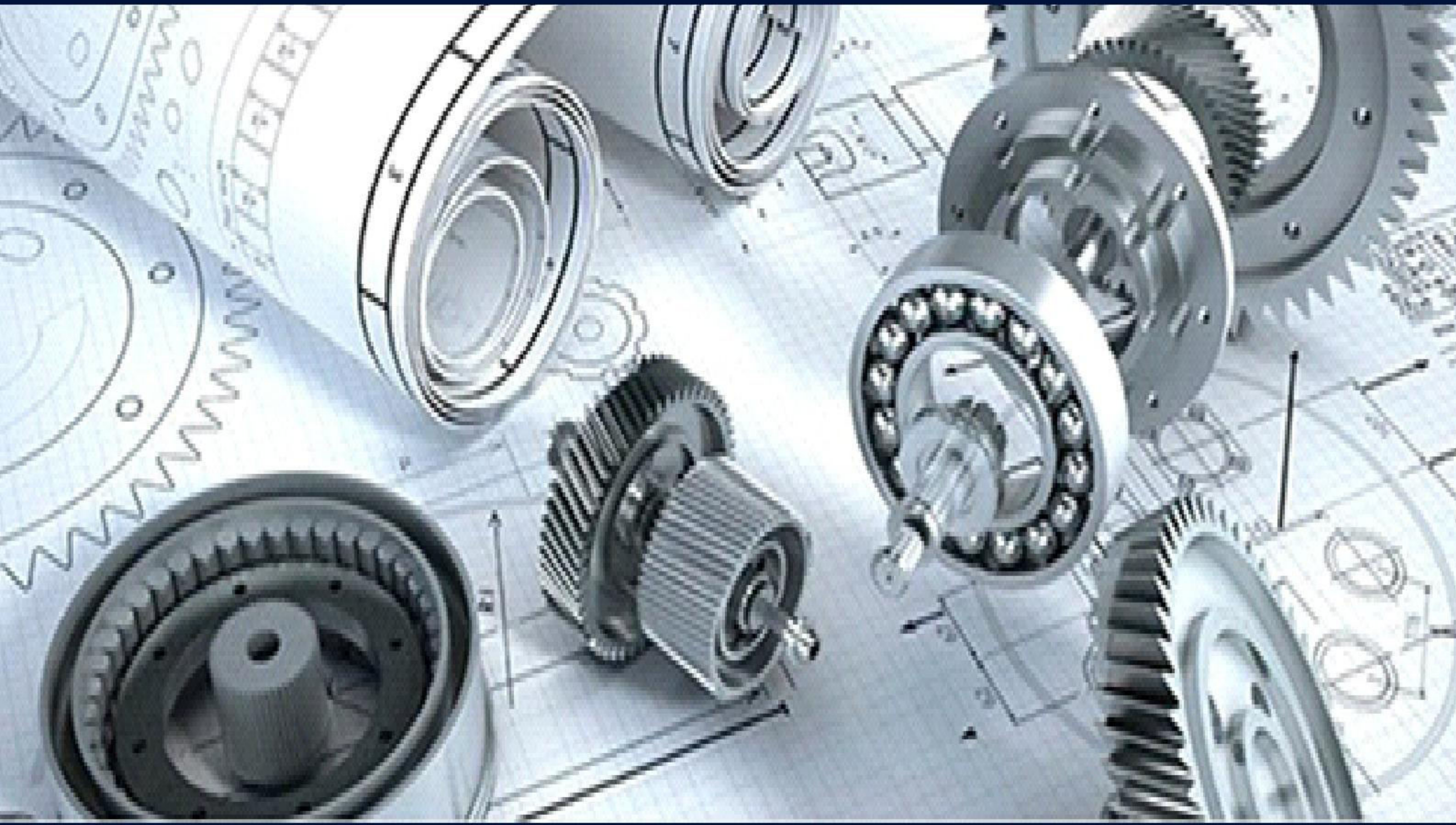

INTERNATIONAL JOURNAL
OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com